श्रीश्रीगोद्रुमचन्द्राय नमः

जैवधर्म

[जीवका धर्म]

श्रीश्रील ठाकुर भक्तिविनोद–विरचित

अनुवादक

त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

जगद्गुरु ॐविष्णुपाद परमहंसस्वामी

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

के पादत्राणावलम्बक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके
सभापति परिव्राजकाचार्य

त्रिदण्डिस्वामी

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज

द्वारा सम्पादित

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

प्रकाशक—
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा—२८१००१ (उ॰ प्र॰)

चतुर्थ संस्करण—संवत् २०५८

प्राप्ति स्थान—

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, पो० नवद्वीप & ०३४३२—४००६८
२. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा, हुगली (प॰ बं॰) & ०३३—८०७४५६
३. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरा (उ॰ प्र॰) & ५०२३३४
४. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰) & ४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ, राणापत घाट, वृन्दावन (उ॰ प्र॰) & ४४४९६१
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, ईशापुर, मथुरा (उ॰ प्र॰) & ४५०५१०
७. श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड,कनखल, हरिद्वार & ०१३३—४१२४३८Œ
८. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा) & ०६७५२—२३०७४
९. श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठ, २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता & ५५५८१७३
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, धूबड़ी (आसाम)
११. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र, कोरन्ट, रान्दियाहाट, जिला-बालेश्वर (उड़ीसा)
१२. श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, शिलिगुड़ी, (प॰ बं॰) & ०३५३—४६२८३७
१३. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, आशुतियाबाड़, मेदिनीपुर (प॰ बं॰)
१४. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सिधाबाड़ी, रूपनारायणपुर, जिला-वर्द्धमान (प० बं०)
१५. श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो० वासुगाँव, जिला—कोकड़ाझार (आसाम)
१६. श्रीमेघालय गौड़ीयमठ, तुरा, वेस्ट गारो हिल्स (मेघालय) & ०३६५१—३२६९१
१७. श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीयमठ, मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी, दार्जिलिङ्ग & ०३५३—४६१५९६
१८. श्रीमदनमोहन गौड़ीय मठ, माथाभाङ्गा, कूचबिहार (प॰ बं॰)
१९. श्रीकृतिरत्न गौड़ीयमठ, श्रीचैतन्य एवेन्यू, दुर्गापुर(प॰ बं॰) & ०३४३—५६८५३२

मुद्रक—रेक्मो प्रिन्टर्स, नई दिल्ली

प्रस्तावना

पृथ्वीतल-पर बहुतसे धर्म-सम्प्रदाय प्रचलित हैं। उनमेंसे अधिकांश सम्प्रदायोंमें ही तत्तद्धर्म-प्रचारके उद्देश्यसे विविध-प्रकारकी प्रणालियोंका अवलम्बन कर विभिन्न भाषाओंमें अनेकानेक ग्रन्थ लिपिबद्ध हुए हैं। जिस प्रकार लौकिक शिक्षामें कनिष्ठ, मध्यम और उत्तमका भेद अथवा ऊँच-नीच आदि विविध-प्रकारके तारतम्य स्वतःसिद्ध हैं, उसी प्रकार विभिन्न धर्म-सम्प्रदायोंकी धर्म-शिक्षाओंमें भी विभिन्न प्रकारके तारतम्य सर्ववादीसम्मत एवं स्वतःसिद्ध हैं। इनमें-से श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेम-धर्मकी शिक्षा सभी दृष्टिसे सर्वोत्तम है—इसे विश्वके सभी निरपेक्ष मनीषीवृन्द एक स्वरसे स्वीकार करेंगे। सर्वोत्तम आदर्श और शिक्षासे अनुप्राणित होनेकी आकांक्षा सभीमें ही परिलक्षित होती है। उन लोगोंकी यह शुभेच्छा कैसे फलवती हो—इसका विचार करके ही परममुक्त पुरुष तथा धर्म-जगत्के प्रधान आदर्श, शिक्षित कुल-चूड़ामणि श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने विभिन्न भाषाओंमें अनेकानेक धर्म-ग्रन्थोंका सृजन किया है। इन ग्रन्थोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाओंका अतिशय ही सरल-सहज भाषामें सांगोपांग वर्णन उपलब्ध होता है। लेखककी सम्पूर्ण ग्रन्थराशिमें इस 'जैव-धर्म' ग्रन्थको ही विभिन्न देशीय धार्मिक मनीषियोंने सर्वोत्तम माना है।

विश्वमें वेद ही सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। तदनुगत उपनिषद् समूह एवं श्रीवेदव्यासद्वारा प्रकटित वेदान्तसूत्र, महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि आदर्शग्रन्थ हैं। आगे चलकर इसी आदर्शसे अनुप्राणित होकर भारतवर्षमें अनेकों प्रकरण-ग्रन्थ लिखे गये, जिनका स्थान-स्थानपर प्रचुर प्रचार और आदर है। इन प्रकरण-ग्रन्थोंमें तारतम्य, वैशिष्ट्य और भेद आदिकी तो बात ही क्या, परस्पर सामञ्जस्यरहित विभिन्न-प्रकारके मतभेद और काल्पनिक विचारधाराएँ भी परिलक्षित होती हैं। फलस्वरूप धर्म-जगतमें नाना प्रकारके उथल-पुथल और उपद्रव हुए हैं और हो रहे हैं। ऐसी विकट परिस्थितिमें स्वयं-भगवान परतत्त्वके रूपमें जीवमात्रका उद्धार करनेके लिए सप्ततीर्थोंमें प्रधान मायातीर्थ—मायापुर (श्रीधाम नवद्वीप) में आविर्भूत होकर

अपने प्रिय पार्षदों द्वारा सम्पूर्ण शास्त्रोंका यथार्थ तात्पर्यमूल सार सङ्कलन करवाकर लगभग ४००-४५० वर्ष पूर्व सबके हृदयमें दिव्यज्ञान-मूला भक्तिका उन्मेष कराया था। उनमें-से तीन-चारको छोड़कर अधिकांश ग्रन्थ ही संस्कृत भाषामें लिपिबद्ध हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षदोत्तम श्री श्रीरूपसनातनके प्रियतम अभिन्न-विग्रह श्रील जीवगोस्वामीने समस्त शास्त्रोंका सार-सङ्कलन कर देवभाषामें षट्सन्दर्भ आदि ग्रन्थोंकी रचना की है और उनके माध्यमसे स्वयं-भगवान्की जीवोद्धार-लीलाकी निगूढ़तम इच्छाको व्यक्त किया है। कुछ लोग शास्त्रोंका यथार्थ तात्पर्य अनुधावन नहीं कर पा सकनेके कारण उनके आंशिक या कलामात्र, यहाँ तक कि छाया या विरुद्ध भावको ही ग्रहण करनेके लिए बाध्य हुए हैं। श्रीजीव गोस्वामीकी लेखनी-प्रसूत शिक्षा ही श्रीमन्महाप्रभुकी ऐकान्तिक शिक्षा है; वेद-उपनिषद्, महाभारत और श्रीमद्भागवतकी शिक्षा है। इसी शिक्षाके सर्वथा निर्दोष और पूर्णतम भावका अवलम्बन करके यह 'जैवधर्म' ग्रन्थ अत्यन्त आश्चर्य रूपसे ग्रथित हुआ है। नीचे 'जैवधर्म'-नामकरणके तात्पर्यकी विवेचना की जा रही है, जिससे पाठकगण इस ग्रन्थकी उपादेयता और गुरुत्वका सहज ही अनुधावन कर सकेंगे।

ग्रन्थकारने इस ग्रन्थका नामकरण किया है—'जैवधर्म'। धर्मके सम्बन्धमें हम सबने कुछ-न-कुछ एक धारणा बना रखी है। इसीलिए यहाँ स्थानाभावके कारण इस विषयमें कुछ अधिक कहना अनावश्यक समझते हैं। संस्कृत भाषामें 'जीव' शब्दमें 'ष्ण' प्रत्यय लगाकर 'जैव' शब्द निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है—'जीवका' अथवा 'जीव-सम्बन्धीय'। अतएव 'जैवधर्म' कहनेसे 'जीवमात्रका धर्म' अथवा 'जीव-सम्बन्धीय' धर्मका बोध होता है। यहाँ जीव किसे कहते हैं?—इस प्रश्नका उत्तर स्वयं ग्रन्थकारने ही इसी ग्रन्थमें विस्तृत विवेचन पूर्वक प्रदान किया है। संक्षेपमें मैं दो-एक बातें यहाँ निवेदन करना आवश्यक समझता हूँ।

'जीव'—शब्दसे जीवन है जिसको, वही जीव है अर्थात् प्राणीमात्र ही जीव है। अतएव जैवधर्मसे ग्रन्थकारने जीवमात्र या प्राणीमात्रके धर्मको लक्ष्य किया है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने अपने एकान्त अनुगत निजजन श्रीरूप-सनातन और जीव आदि छह गोस्वामियोंके द्वारा प्राणीमात्र या जीवमात्रके लिए कौन-सा धर्म ग्रहणीय और पालनीय है—इस विषयमें शिक्षा दी है। तदनन्तर लगभग ४०० वर्षोंके पश्चात् श्रीश्रीगौर-जन्मस्थान श्रीधाम

मायापुरके समीप ही इस ग्रन्थके लेखक सप्तम गोस्वामी श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने आविर्भूत होकर, जीवोंके प्रति दयार्द्र-चित्त होकर बंगला भाषामें 'जैवधर्म' की रचना की है।

भगवान्‌की इच्छासे भगवान्‌के निजजन श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य चरितामृत-ग्रन्थमें भगवान श्रीगौरचन्द्रकी शिक्षाका सार निम्नलिखित पयारमें व्यक्त किया है—

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदा-भेद प्रकाश।।

(मध्य. २०/१०८)

ग्रन्थकारने गौड़ीय वैष्णवोंकी सम्पूर्ण शिक्षाके बीजमन्त्र-स्वरूप उक्त मन्त्रके आधारपर ही 'जैवधर्म' की रचना की है। अतएव यह ग्रन्थ जाति, वर्ण, आश्रम और देश-काल-पात्र आदि भेदोंसे परे मानव मात्रके लिए ही नहीं, अपितु मनुष्येतर कुलोद्‌भुत प्रस्तर, पशु, पक्षी, कीट, पतंग और जलचर आदि स्थावर और जंगम योनियोंको प्राप्त प्राणीमात्रके लिए ही हितकर और ग्रहणीय है। मनुष्येतर प्राणियोंमें जैवधर्म ग्रहणके उदाहरण-स्वरूप अहिल्या (पाषाणी), यमलार्जुन (वृक्ष), सप्तताल (वृक्ष), नृगराज (गिरगिट), भरत (मृग), सुरभि (गाय), गजेन्द्र (हाथी), जामवन्त (रीछ), अङ्गद-सुग्रीव (बन्दर) आदिके नाम उल्लेख योग्य हैं। जगद्‌गुरु ब्रह्माजीने स्वयं-भगवान कृष्णसे तृण-गुल्म, पशु, पक्षी आदि किसी भी योनिमें जन्म देकर तदीय चरणकमलोंकी सेवाकी याचना की है—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनाना भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्।।

(श्रीमद्भा. १०।१४।३०)

भक्तराज प्रह्लाद महाराजने तो और भी स्पष्ट रूपसे पशु आदि सहस्रों योनियोंमें जन्म ग्रहण करके भी भगवद्दास्य रूप जैवधर्म-प्राप्तिकी लालसा व्यक्त की है—

नाथ योनि सहस्रेषु येषु येषु ब्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि।।

और स्वयं ग्रंथकारने भी स्वरचित 'शरणागति' ग्रंथमें ऐसी ही प्रार्थना की है—

कीट जन्म हउ यथा तुया दास।
बहिर्मुख ब्रह्मजन्मे नाहि आश।।

अतएव 'जैवधर्म' की शिक्षा प्राणीमात्रके लिए आदरणीय और ग्रहणीय है। इस शिक्षाको सर्वान्तःकरण द्वारा अपनानेसे प्राणीमात्र अति सहज ही मायामोहके कठोर निगडकी घोर यन्त्रणासे तुच्छ-अलीक आनन्दकी मृग-मरीचिकासे सदाके लिए छुटकारा प्राप्त कर भगवद् सेवानन्दमें निमग्न होकर पराशान्ति और परानन्दको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।

पूर्व-प्रदर्शित शिक्षाके ऊँच-नीच तारतम्यकी भाँति धर्मतत्त्वमें भी ऊँच-नीच आदिका तारतम्य स्वीकृत है। उन्नत शिक्षाका आदर्श उन्नत अधिकारी ही ग्रहण कर सकता है। तात्पर्य यह कि समस्त प्रकारके प्राणियोंमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्येतर प्राणी भी अनेक प्रकारके हैं। प्राणी या जीव कहनेसे चेतन पदार्थका ही बोध होता है। यहाँ अचेतन या जड़ पदार्थोंका विषय आलोच्य नहीं है। चेतनकी स्वाभाविक वृत्ति या क्रियाको ही धर्म कहते हैं। वह धर्म वास्तवमें चेतनकी वृत्ति या उसके स्वरूपगत स्वभावको ही लक्ष्य करता है। धर्मकी वाणी कहनेसे चेतनकी वाणीका ही बोध होता है। इस ग्रन्थके सोलहवें अध्यायमें चेतनके तारतम्यमूलक क्रम-विकासका विज्ञान-संगत सूक्ष्म विवेचन है। चेतन अर्थात् मायाबद्ध जीवोंकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं—(१) आच्छादित चेतन, (२) संकुचित चेतन, (३) मुकुलित चेतन, (४) विकसित चेतन और (५) पूर्ण विकसित चेतन। ऐसे चेतन ही जीव या प्राणी कहलाते हैं। जीवोंकी ये पाँच श्रेणियाँ पुनः स्थावर और जङ्गम भेदसे दो भागोंमें विभक्त हैं। इनमेंसे वृक्ष, लता, गुल्म और प्रस्तर आदि स्थावर प्राणियोंको आच्छादित चेतन कहते हैं। इस आच्छादित चेतनको छोड़कर अन्य चार प्रकारके चेतन समूहको जङ्गम (चलने वाले) प्राणी कहते हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंग एवं जलचर प्राणीसमूह संकुचित चेतन हैं। आच्छादित और संकुचित इन दो श्रेणियोंमें मनुष्येतर कुलोत्पन्न जीव होते हैं। मुकुलित, विकसित और पूर्ण विकसित चेतन—इन तीनों ही श्रेणियोंमें मनुष्य शरीर वाले जीवसमूह आते हैं। अतएव इन तीन श्रेणियोंमें अवस्थित चेतन, आकारकी दृष्टिसे मानव होने पर भी चेतनताके क्रम-विकासकी दृष्टिसे इनमें तारतम्य है। इसी तारतम्य-विचारको ध्यानमें रखकर ही उनमें कनिष्ठ, मध्यम और उत्तमका विचार होता है।

फिर भी वृक्ष, लता, गुल्म, पशु-पक्षी और मनुष्य—ये सभी जीव ही हैं और इन सभीका ही एकमात्र धर्म भगवदुपासना ही है। परन्तु इन सबमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और भगवदुपासना रूप जैवधर्म उसीका विशेष धर्म है।

ज्ञान या बोधके आच्छादनके तारतम्यानुसार चेतन वृत्तिका तारतम्य हुआ करता है। मानव ही सर्वप्रकारके प्राणियोंमें श्रेष्ठ है—इस विषयमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह श्रेष्ठत्व कहाँ और क्यों है—इस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। वृक्ष, लता, कीट-पतंग, पशु-पक्षी और जलचर प्राणियोंसे आकार-विकार, बल-वीर्य, सौन्दर्य एवं रूप-लावण्य आदिकी दृष्टिसे मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु मनोवृत्ति एवं बुद्धिके विकास अथवा चैतन्यवृत्तिके अधिक विकासकी दृष्टिसे ही मानव अन्यान्य प्राणियोंसे सर्वतोभावेन श्रेष्ठ है। अतएव 'जैवधर्म' में इसी श्रेष्ठ धर्मका विवेचन किया गया है। साधारणतः जीव-मात्रका धर्म होनेपर भी इसे मानव-जातिका ही धर्म समझना चाहिए। क्योंकि श्रेष्ठ धर्ममें श्रेष्ठ जीवका ही विशेष रूपसे अधिकार होता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ग्रन्थका नाम 'जैवधर्म' न रखकर 'मानवधर्म' या 'मनुष्य मात्रका धर्म' ही क्यों नहीं रखा गया? इसका कारण अनुसन्धान करने पर यह ज्ञात होता है कि धर्ममात्रमें मनुष्यकी वृत्ति होती है। मनुष्येतर प्राणियोंमें धर्म नहीं होता—यही साधारण विधि है। वृक्ष, लता, प्रस्तर, कृमि, कीट, पतंग, मत्स्य, कच्छप, पशु-पक्षी और साँप आदि जीवके अन्तर्भूत होने पर भी इनमें मोक्ष या भगवदुपासना सूचक धर्मवृत्ति परिलक्षित नहीं होती।

कतिपय दार्शनिकोंका यह मत है कि जिन प्राणियोंमें केवलमात्र पशुत्व अर्थात् मूर्खता और निष्ठुरता (Animality) होती है, वे ही पशु हैं। इस पशु-श्रेणीके कतिपय जीवोंमें जो जन्मगत स्वाभाविक या सहज ज्ञानवृत्ति (Intuition) परिलक्षित होती है, वह कुछ हद तक मानव वृत्तिका आभासमात्र है; वास्तवमें वह मानव-वृत्ति नहीं। इस पशुत्व (Animality) के साथ ज्ञान या विवेक-बुद्धि (Rationality) युक्त होनेपर ही उसे मानवता और जिनमें यह मानवता हो, उन्हें मानव या मनुष्य कहते हैं। पाश्चात्य दार्शनिकोंने भी कहा है—Men are rational beings। हमारे आर्य ऋषियोंने उक्त पशुवृत्ति (Animality) से संक्षेपतः आहार, निद्रा, भय और मैथुन—इन चार वृत्तियोंको

लक्ष्य किया है। इस पशुवृत्तिको अतिक्रम कर धर्मवृत्ति (Rationality) से युक्त होनेपर ही मनुष्यत्व प्रमाणित होता है। परन्तु यहाँ यह विशेषरूपसे ध्यान देने योग्य है कि पाश्चात्य दर्शनमें Rationality का अर्थ अति संकुचित है और हमारे आर्य दर्शनका 'धर्म' शब्द बहुत ही व्यापक है, जो पाश्चात्य दर्शनके Rationality को अपने एकांशमें अन्तर्भूत कर उससे भी बहुत उन्नत ईशोपासना-वृत्ति तकको धारण करता है। यह धर्म ही मनुष्यत्वका यथार्थ परिचायक है। धर्महीन प्राणियोंको 'पशु' की संज्ञा दी गई है। शास्त्र कहते हैं—

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषां अधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिः समाना।।

तात्पर्य यह कि आहार, निद्रा, भय और मैथुनरूप इन्द्रिय-तर्पणादि प्राणी या जीवमात्रकी स्वाभाविक वृत्तियाँ हैं। मनुष्य और मनुष्येतर सब प्रकारके जीवोंमें ही ये वृत्तियाँ समान रूपसे परिलक्षित होती हैं। इसमें दो मत नहीं। परन्तु मनुष्यको मनुष्य तभी कहा जायेगा, जबकि उसमें धर्मवृत्ति देखी जाय। ***'धर्मो हि तेषां अधिको विशेषो'*** अर्थात् पशु आदिकी अपेक्षा मनुष्यमें धर्म ही विशेष या अधिक होता है। जिसमें धर्मका नितान्त अभाव होता है, वह मनुष्य नहीं कहा जा सकता। ***'धर्मेण हीना पशुभिः समाना।'***—धर्महीन व्यक्ति पशु-सदृश है। इसलिए हमारे देशमें धर्महीन मनुष्यको नरपशु कहा गया है।

अस्तु, यह विशेष रूपसे विचारणीय है कि आजकल लोग धर्मका परित्याग करके केवल आहार-विहार आदि विषय-भोगोंमें प्रमत्त रहते हैं, उनकी यह वृत्ति—पशुवृत्ति या मनुष्येतर वृत्ति है। कलिके प्रभावसे आजकल मनुष्य निम्नगामी होकर क्रमशः पशुत्वकी ओर अग्रसर हो रहा है। इसलिए ग्रन्थकारने सभीकी हितकामनासे ही ग्रन्थका नाम 'जैवधर्म' रखकर शास्त्र-मर्यादाको सम्पूर्ण रूपमें अक्षुण्ण रखा है। मनुष्यमें ही ईश्वर-उपासनारूप धर्म परिलक्षित होता है, पशु-पक्षी आदि मनुष्येतर प्राणियोंमें नहीं। अतएव मनुष्य सर्वोच्च प्राणी है और वही सर्वोच्च शिक्षा या धर्मका विशेष अधिकारी है। जैवधर्म उन्होंके लिए पठनीय है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी विशेषता यह है कि उन्होंने सबसे निम्न व्यक्तिको भी कृपा करके अपनी उच्चतम शिक्षामें अधिकार प्रदान किया है। यह

किसी भी दूसरे अवतारमें नहीं दिया गया है। इसीलिए शास्त्रकारोंने श्रीमन्महाप्रभुका बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें स्तवन किया है—

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः।।

(विदग्धमाधव १/२)

अर्थात् जो सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वल-रस जगत्को कभी भी दान नहीं किया गया, जिससे जीवमात्र अत्यन्त सहज और सरल रूपसे माया-मोहके बन्धनसे सदाके लिए मुक्त होकर कृष्णप्रेम प्राप्त कर धन्य हो सके, उसी स्वभक्ति-सम्पत्तिका दान करनेके लिए करुणावशतः सुवर्णकान्ति-द्वारा देदीप्यमान स्वयं-भगवान श्रीशचीनन्दन गौरहरि कलिकालमें अवतीर्ण हुए हैं। लेखकने भी श्रीमन्महाप्रभुके उक्त वैशिष्ट्यकी सर्वतोभावेन रक्षा की है।

'वैष्णवधर्ममें मनुष्य मात्रका अधिकार है'—ग्रन्थकारने 'जैवधर्म'के ग्यारहवें अध्यायके मौलवी साहेब और वैष्णवोंके परस्पर विचारप्रसंगमें इस सिद्धान्तका युक्ति-संगत विचारों एवं दृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके-द्वारा प्रतिपादन किया है। उर्दू, फारसी और अंग्रेजी आदि किसी भी भाषाको बोलनेवाला व्यक्ति वैष्णव हो सकता है। केवलमात्र संस्कृतभाषी ही वैष्णव हो सकेंगे—ऐसी बात नहीं, प्रत्युत् ऐसा देखा जाता है कि हिन्दी, बँगला, उड़िया, आसामी, तमिल, तेलगु आदि भाषा-भाषी अनेकों व्यक्ति प्रचुर प्रतिष्ठासम्पन्न वैष्णव-पदवीको प्राप्त कर चुके हैं। अतएव मुसलमान, ईसाई, बौद्ध और जैन आदि जातियोंके लोग वैष्णव होनेके अधिकारी हैं। भाषाके वैषम्यसे वैष्णवताका वैषम्य नहीं होता।

भाषा-विद्वेषियोंके विचारोंकी उपेक्षा करके श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने भाषाओंके माध्यमसे श्रीमन्महाप्रभुकी अप्राकृत भावमयी शिक्षाका प्रकाश किया है। अप्राकृत दैव-संस्कृत-भाषा तथा तदनुगत बंगलाके अतिरिक्त उड़िया, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओंमें उनके द्वारा रचित लगभग १०० ग्रन्थोंका परिचय पाया जाता है। उनमेंसे कतिपय विशेष ग्रन्थोंके नाम उनके रचनाकालके साथ नीचे दिये जा रहे हैं—

(क) संस्कृत—(१) वेदान्ताधिकरण—बंगाब्द १२७९[१], (२) दत्तकौस्तुभम् १२८१, (३) दत्तवंशमाला १२८३, (४) बौद्धविजय काव्यम् १२८५, (५) श्रीकृष्णसंहिता १२८७, (६) 'सन्मोदन भाष्य' (शिक्षाष्टक का) १२९३, (७) दशोपनिषद्-चूर्णिका १२९३, (८) भावावली (श्लोक और भाष्य) १२९३, (९) 'श्रीचैतन्यचरणामृत'-भाष्य (श्रीचैतन्योपनिषद्का) १२९४, (१०) श्रीमदाम्नाय सूत्रम् १२९७, (११) तत्त्वविवेकः या श्रीसच्चिदानन्दानुभूतिः १३००, (१२) तत्त्वसूत्रम् १३०१, (१३) 'वेदार्क-दीधिति' व्याख्या (ईशोपनिषद्की) १३०१, (१४) श्रीगौराङ्ग-स्मरणमङ्गल-स्तोत्रम् १३०३, (१५) श्रीसनातनगोस्वामीके 'श्रीभगवद्धामामृतम्' ग्रन्थका भाष्य १३०५, (१६) श्रीभागवतार्कमरीचिमाला १३०८, (१७) श्रीभजन रहस्यम् १३०९, (१८) स्वनियम-द्वादशकम् १३०४, (१९) ब्रह्मसूत्र या वेदान्त-दर्शनका भाष्य, (२०) शिक्षा-दशमूलम् इत्यादि।

(ख) बंगला (गद्य)—(१) गर्भस्तोत्र-व्याख्या या सम्बन्ध-तत्त्व-चन्द्रिका बंगाब्द १२७७, (२) श्रीसज्जनतोषिणी (मासिक पत्रिका, १म्-१७ खण्ड) आरम्भ १२८८, (३) 'रसिकरञ्जन भाषाभाष्य' (गीताकी श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीटीकासहित) १२९३, (४) श्रीचैतन्यशिक्षामृत १२९३, (५) प्रेम-प्रदीप (पारमार्थिक उपन्यास) १२९३, (६) 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' का बंगानुवाद (बलदेवभाष्य) १२९३, (७) वैष्णवसिद्धान्तमाला १२९५, (८) सिद्धान्त-दर्पणानुवाद १२९७, (९) 'विद्वदरंजन' भाषा-भाष्य (श्रीगीताके श्रीबलदेव-भाष्य सहित) १२९८), (१०) श्रीहरिनाम, श्रीनाम, श्रीनाम-तत्त्व, श्रीनाम-महिमा, श्रीनाम-प्रचार (वैष्णव-सिद्धान्तमालाके गुच्छ सहित) १२९९, (११) श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा १२९९, (१२) तत्त्व मुक्तावली या मायावादशतदूषणी १३०१, (१३) 'अमृतप्रवाह-भाष्य' (श्रीचैतन्यचरितामृतका) १३०२, (१४) श्रीरामानुज-उपदेश १३०३, (१५) जैवधर्म १३०३, (१६) 'प्रकाशिनी' वृत्ति सहित ब्रह्मसंहिताका बंगानुवाद १३०४, (१७) 'श्रीकृष्णकर्णामृतम्' ग्रन्थकी व्याख्या १३०५, (१८) 'पीयूषवर्षिणी' वृत्ति (श्रीउपदेशामृतम्की) १३०५, (१९) श्रीनरहरि ठाकुर कृत 'श्रीभजनामृतम्'—ग्रन्थका भाष्य १३०६, (२०) 'श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः' ग्रन्थका बंगानुवाद १३०८ इत्यादि।

---

[१] ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थोंके रचनाकालमें 'बंगाब्द' का प्रयोग किया है। जो विक्रमी सम्वत्से ६५० वर्ष पीछे प्रचलित हुआ है। अर्थात् बंगाब्दमें ६५० का योग करने से वह विक्रमी सम्वत् होगा।

(ग) बंगला (पद्य)—(१) हरिकथा—बंगाब्द १२५७, (२) शुंभ-निशुंभ-युद्ध १२५८, (३) विजन ग्राम १२७०, (४) संन्यासी १२७०, (५) कल्याण-कल्पतरु १२८८, (६) मनःशिक्षा १२९३, (७) श्रीकृष्णविजय १२९४, (८) श्रीनवद्वीपधाम माहात्म्य १२९७, (९) शरणागति १३००, (१०) शोकशातन १३००, (११) श्रीनवद्वीपभावतरंग १३०६, (१२) श्रीहरिनाम-चिन्तामणि १३०७, (१४) गीतावली, १४ गीतमाला, (१५) श्रीप्रेमविवर्त्त (सम्पादन) १३१३ इत्यादि।

(घ) उर्दू—वालिदे रेजिष्ट्री—सन् १८६६ ई.

(ङ) अंग्रेजी—(1) Peried (1st & 2nd volume) 1857-1858, (2) Maths of Orissa 1860, (3) Our wants 1863, (4) Speech on Goutam 1866, (5) Speech on Bhagavatam 1869, (6) Reflection 1871, (7) Thakur Haridas 1871, (8) Temple of Jagannath 1871, (9) Monasteries of Puri 1871, (10) Review (Personality of Godhead) 1883, (11) Shri Chaitanya Mahaprabhu, His life and Precepts 1996, (12) A Beacon Light etc.

उपरोक्त ग्रन्थ—तालिकाको देखकर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ग्रन्थकार विभिन्न भाषाओंके पारदर्शी सुपण्डित थे। यहाँ लेखकके जीवनके एक वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। वे पाश्चात्य शिक्षाके धुरन्धर विद्वान होने पर भी पाश्चात्य प्रभावसे सर्वथा मुक्त थे। पाश्चात्य शिक्षाविदोंका कहना है—'Don't follow me but follow my words', अर्थात् 'मैं जैसा करता हूँ वैसा न करो; मैं जैसा कहता हूँ वैसा करो'। परन्तु श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका जीवन-चरित्र इस कथनका प्रतिवाद है। उन्होंने स्वलिखित विविध ग्रन्थोंमें जिन शिक्षाओंका उल्लेख किया है, उनमें-से प्रत्येक शिक्षाका आचरण उन्होंने स्वयं अपने जीवनमें करके दिखलाया है। इसीलिए उनकी शिक्षा और भजन रीतिको 'भक्तिविनोद धारा' कहते हैं। उनके ग्रन्थोंमें एक भी ऐसी बात नहीं है, जिसका उन्होंने स्वयं पालन न किया हो। अतएव उनकी लेखनी और जीवनी—करनी और कथनी एक ही है।

जिस महापुरुषका ऐसा महान वैशिष्ट्य है, पाठकोंको उनका परिचय जाननेके लिए कौतूहल होना स्वाभाविक है। विशेषतः आधुनिक पाठकोंको कोई भी विषय अवगत होनेके लिए उसके लेखकके सम्बन्धमें अपरिचित रहनेसे उसके द्वारा लिखित विषयोंके प्रति श्रद्धा नहीं होती। इसीलिए संक्षेपमें लेखकके सम्बन्धमें दो-एक बातें निवेदन कर रहा हूँ।

अतिमर्त्य महापुरुषोंके सम्बन्धमें आलोचना करते समय साधारण मनुष्योंके जन्म, मृत्यु और स्थितिकालकी भाँति विचार करना भूल होगी, क्योंकि महापुरुषगण जन्म और मृत्युसे परे होते हैं। वे नित्यकाल विद्यमान रहने पर भी लोकमें उनका आविर्भाव और तिरोभाव ही केवलमात्र लक्ष्य किया जाता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने १८ चैत्र, १२४५ बंगाब्द (२ सितम्बर १८३८ ई.) रविवारको पश्चिम बंगालके नदिया जिलेके अन्तर्गत श्रीगौराविर्भाव-स्थली श्रीधाममायापुरके सन्निकट 'वीरनगर' नामक ग्राममें अति उच्चकुलमें आविर्भूत होकर गौड़ीयगगनको प्रोद्भाषित किया था और ९आषाढ़, १३२१ बंगाब्द (२३ जून, १९१४ ई.) को कलकत्ता महानगरीमें तिरोहित होकर श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके परमाराध्य श्रीश्रीगान्धर्विका-गिरिधारीकी मध्याह्न-लीलामें प्रवेश किया।

इन ७६ वर्षोंके अल्पकालमें उन्होंने स्वयं चारों आश्रमोंका आचरण करके जगत्को शिक्षा दी है। सर्वप्रथम उन्होंने ब्रह्मचर्यका पालन करके बहुमुखी उच्च शिक्षाएँ प्राप्त कीं। तदनन्तर गार्हस्थ्य-जीवनमें सदुपायसे अर्थोपार्जन करके कुटुम्बका भरण-पोषण करनेका जो आदर्श दिखलाया है, वह प्रत्येक गृहस्थके लिए अनुसरणीय है। इसी समय उन्होंने अंग्रेजी राजत्वमें शासन एवं विचार विभागके एक विशिष्ट उच्च पदस्थ कर्मचारी (गजटेड आफिसर) के रूपमें सारे भारतवर्षका भ्रमण किया था। यहाँ तक कि जो प्रदेशसमूह उच्छृंखल(Unregulated Provinces) के नामसे कुख्यात थे, वहाँ पर भी इन महापुरुषने अपने प्रौढ़ सुविचारों तथा शासन-सुकौशलसे शान्ति और सुश्रृङ्खलाकी स्थापना की। उन्होंने गृहस्थ जीवनमें भी अपने धार्मिक आदर्शसे तत्कालीन सभी लोगोंको आश्चर्यचकित कर दिया था। इस प्रकार गुरुदायित्वपूर्ण कार्योंमें नियुक्त रहकर भी उन्होंने अनेकानेक भाषाओंमें अनेक ग्रन्थोंकी रचनाएँ कीं। उनके द्वारा रचित ग्रन्थोंकी तालिकामें हमने उन-उन ग्रन्थोंके रचनाकालका भी उल्लेख किया है। उस तालिकाको मिलाकर देखनेसे पाठकवर्ग उनकी आश्चर्यजनक सृजन-शक्तिका अनुमान लगा सकेंगे। तत्पश्चात् राजकीय शासन-विभागसे सेवा निवृत्त होकर वानप्रस्थ आश्रय ग्रहणकर उन्होंने नवद्वीपके नौ-द्वीपोंके अन्तर्गत कीर्तनाख्या गोद्रुमद्वीपमें सुरभि-कुंजकी स्थापना की तथा वहीं पर बहुत समय तक भजन किया। तत्पश्चात् संन्यास ग्रहण करके उसीके समीप स्वानन्द-सुखदकुंजमें रहकर उन्होंने ठीक श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने जिस प्रकारसे

स्वयं और अपने अनुगत छह गोस्वामियों द्वारा श्रीकृष्णकी आविर्भाव और अन्यान्य लीला-स्थलियोंका प्रकाश किया था, उसी प्रकारसे श्रीचैतन्यदेवकी आविर्भाव-स्थली तथा अन्यान्य गौरलीला-स्थलियोंका प्रकाश किया। यदि ये जगत्में आविर्भूत न होते तो श्रीगौरांग महाप्रभुकी लीलास्थलियाँ तथा उनकी शिक्षाएँ विश्वसे विलुप्त हो जातीं। इसीलिए समग्र गौड़ीय वैष्णव जगत इनका चिरऋणी है और रहेगा। यही कारण है कि समग्र वैष्णव जगत्में इनको 'सप्तम' गोस्वामीका अत्युच्च सम्मान प्रदान किया गया है।

इन महापुरुषने अपने जीवनके उच्च आदर्श द्वारा जिस प्रकार लोकशिक्षाका प्रचार-प्रसार किया है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओंमें ग्रन्थादि प्रणयन करके प्रचुर शिक्षा दी है। इसके अतिरिक्त इनके दानके और भी एक वैशिष्ट्यका उल्लेख न करनेसे मादृश जीवकी घोर अकृतज्ञता ही प्रकाशित होगी। श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने समग्र विश्वमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुद्वारा प्रकटित धर्म-प्रचारकके मूल सेनापतिके रूपमें जिस महापुरुषको इस जगतीतलपर आविर्भूत कराया है, वे मदीय **गुरुपादपद्म जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद परमहंसकुल-चूड़ामणि अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके** रूपमें समग्र विश्वमें सुपरिचित हैं। इन महापुरुषको जगत्में आविर्भूत कराना—श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरकी एक अतुलनीय अभिनव कीर्ति है। साधु-वैष्णव समाज उनको संक्षेपमें **'श्रील प्रभुपाद'** कहकर ही गौरव ज्ञापन करता है। मैं भी भविष्यमें उक्त परममुक्त महापुरुषके नामके स्थलपर **'श्रील प्रभुपाद'** का उल्लेख करूँगा।

श्रील प्रभुपादने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके पुत्रके रूपमें या अन्वय रूपमें, यहाँ तक कि पारम्पर्यरूपमें आविर्भूत होकर समग्र विश्वमें श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव द्वारा आचरित और प्रचारित श्रीमाध्व गौड़ीय वैष्णवधर्मका अत्युज्ज्वल पताका उत्तोलन करके धर्मराज्यका प्रभूत कल्याण और उन्नति-साधन किया है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड और बर्मा आदि सुदूर पश्चिमी और पूर्वी देशसमूह भी इन महापुरुषकी कृपासे वंचित नहीं हुए हैं। सारे भारतवर्ष और भारतके बाहर सारे विश्वमें चौंसठ प्रचारकेन्द्र—गौड़ीय मठ स्थापित कर श्रीचैतन्यवाणीका प्रचार किया था। साथ ही उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके सारे ग्रन्थोंका प्रचार करके जगत्में अतुलनीय कीर्ति स्थापित की है। कालके प्रभावसे

अर्थात् कलिकी प्रबलतासे गौड़ीय वैष्णव धर्ममें नाना-प्रकारके असदाचार-कदाचार, असिद्धान्त-कुसिद्धान्त आदिका प्रवेश हो जानेके कारण तेरह अपसम्प्रदाय निकल पड़े थे। ये तेरह अपसम्प्रदाय हैं—

आउल बाउल कर्त्ताभजा नेड़ा दर्वेश साईं।
सहजिया सखीभेकी स्मार्त्त जाति गोसाईं।।
अतिवाड़ी चूड़ाधारी गौराङ्गनागरी।
तोता कहे ए तेरह संग नाहि करि।।

श्रील प्रभुपाद द्वारा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके ग्रन्थोंका प्रकाश और प्रचार होनेसे पूर्वोक्त अपसम्प्रदायोंकी अपचेष्टाओंका प्रचुर परिमाणमें ह्रास हुआ है। फिर भी दुःखका विषय है कि इतना होने पर भी कलिके प्रभावसे आहार-विहार और 'बाँचा पाड़ा' अर्थात् जीवनबीमा (Life Insure) ही किसी-किसी धर्म-सम्प्रदायके प्रचारके प्रधान विषय हो गये हैं। वास्तवमें यह सब पशुवृत्तिका ही नामान्तर या पाशविक अनुशीलनका प्रसार मात्र है। हम पहले ही ऐसा कह आये हैं।

'जैवधर्म' में पूर्वोक्त तथाकथित कलि-प्रचोदितधर्म—धर्म नहीं है, धर्मका स्वरूप क्या है, धर्मके साथ हमारा सम्बन्ध क्या है, धर्मका पालन करनेसे क्या लाभ है तथा धर्मका यथार्थ तात्पर्य क्या है—आदि विषयोंका बड़ा ही साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लगभग ६०० पृष्ठोंके इस छोटेसे ग्रन्थका पाठ करनेसे सम्पूर्ण शास्त्रोंका तात्पर्य अत्यन्त संक्षेपमें जाना जा सकता है। इसमें प्रश्नोत्तरके रूपमें विश्वके सारे धर्मोंकी तुलनामूलक आलोचना की गयी है। एक वाक्यमें मैं यह कह सकता हूँ कि इस छोटेसे ग्रन्थमें गागरमें सागरकी भाँति सम्पूर्ण भारतीय शास्त्रोंका सार भरा हुआ है। अतएव यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि किसी धर्मजीवनमें इस ग्रन्थका पाठ नहीं किये जानेसे धर्म-तत्त्व ज्ञानका उसमें अवश्य ही अभाव रह जायेगा।

इस ग्रन्थमें किन-किन महत्वपूर्ण विषयोंका विवेचन हुआ है, इस विषयको जाननेके लिए पाठकवर्गसे इस ग्रन्थकी अनुक्रमणिका देखनेके लिए अनुरोध करता हूँ। ग्रन्थकारने शास्त्र-मर्यादाको अक्षुण्ण रखते हुए सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक-तत्त्वको तीन खण्डोंमें प्रकाशित किया है। कुछ अनभिज्ञ लेखकोंने (१) सम्बन्ध, (२) अभिधेय और (३) प्रयोजन—इस क्रमका उलङ्घन कर सबसे पहले ही (३) 'प्रयोजन' तत्त्वकी आलोचना करके पीछे (१) 'सम्बन्ध' (२) 'अभिधेय'—तत्त्वोंका वर्णन किया है, जो

वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत और विशेषकर प्रमाण शिरोमणि श्रीमद्‌भागवत आदिके सिद्धान्तोंके सर्वथा प्रतिकूल है।

पहले खण्डमें नित्य और नैमित्तिक धर्मोंका विश्लेषण है, दूसरे खण्डमें सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-तत्त्वोंका दृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके आधार पर साङ्गोपाङ्ग वर्णन है तथा तीसरे खण्डमें रस-विचारका मार्मिक विवेचन है। श्रील प्रभुपादकी विचारधाराके अनुसार जब तक कुछ उन्नत अधिकारकी प्राप्ति न हो जाय, तब तक 'रस-विचार' में प्रवेश करना उचित नहीं। यदि कोई अनधिकारी साधक 'रस-विचार' में प्रवेश करनेकी अनधिकार चेष्टा करेगा तो उसका हितके अपेक्षा अहित ही होगा। श्रील प्रभुपादने 'भाई सहजिया', 'प्राकृतरस-शत-दूषणी' तथा अन्यान्य अनेक प्रबन्धोंमें इसे सुस्पष्टरूपसे व्यक्त किया है। इसलिए इस विषयमें सतर्क रहनेकी आवश्यकता है।

मूल 'जैवधर्म'-ग्रन्थ बंगला भाषामें है। फिर भी इसमें शास्त्रीय प्रमाण आदि सम्वलित संस्कृत भाषाका प्रचुर प्रयोग किया गया है। इस ग्रन्थकी व्यापक लोक-प्रियताका इसीसे पता चलता है कि थोड़े ही समयमें बंगला भाषामें इसके दस-बारह बड़े-बड़े संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी भाषामें अनुदित जैवधर्मका प्रस्तुत संकरण—श्रीगौड़ीयवेदान्त समिति द्वारा अभिनव आकारमें प्रकाशित जैवधर्मके अभिनव संस्करणकी पद्धतिका अनुसरण करके मुद्रित हुआ है। हिन्दी पारमार्थिक मासिक—**'श्रीभागवत पत्रिका' के सुयोग्य सम्पादक—त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने बड़े** परिश्रमसे इस ग्रन्थको हिन्दीमें अनूदित कर उक्त पत्रिकाके पहले वर्षसे छठे वर्ष तकमें प्रकाशित किया है। अब अनेक श्रद्धालु व्यक्तियोंके बारम्बार अनुरोध पर हिन्दी भाषी धार्मिक जनताके कल्याणार्थ उसीको पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया गया। प्रसंगवश मैं यह कहनेके लिए बाध्य हो रहा हूँ कि अनुवादक महोदय हिन्दी भाषी हैं, बंगला उनकी मातृ-भाषा नहीं है, तथापि उन्होंने इस ग्रन्थका अनुशीलन करनेके लिए बंगला भाषाका अध्ययन किया तथा उसमें विशेष अभिज्ञता प्राप्त करके कठोर परिश्रम और कष्ट स्वीकार कर इस ग्रन्थका अनुवाद किया है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि इसमें मूल-ग्रन्थके कठिन दार्शनिक एवं रस-विचारके अतिगहन तथा परमोन्नत सूक्ष्म भावोंकी भलीभाँति रक्षा हुई है। **हिन्दी जगत इस महान कार्यके लिए इनका कृतज्ञ रहेगा। विशेषतः श्रील**

प्रभुपाद और श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इनके इस अक्लान्त सेवा कार्यके लिए निश्चित रूपमें इन पर प्रचुर कृपा करेंगे।

और भी कतिपय भगवद्भक्तोंकी इस ग्रन्थके मुद्रण और प्रकाशन कार्यमें सहायता एवं सहानुभूतिका उल्लेख नहीं करनेसे मेरे कर्त्तव्यकी हानि होगी। इनमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराज (हाल ही में जिनका परलोकगमन हो चुका है), प्रिय कुंजबिहारी ब्रह्मचारी, प्रिय श्रीकृष्णस्वामी दास ब्रह्मचारी, प्रिय शेषशायी ब्रह्मचारी, प्रिय ओमप्रकाश ब्रजवासी 'साहित्यरत्न' और पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं।

सर्वोपरि मेरा वक्तव्य यह है कि मैं उक्त भक्तजनोंका गौरवपात्र होनेके कारण ही इस ग्रन्थके सम्पादनमें मेरा नाम व्यवहृत हुआ है। वास्तवमें इस ग्रन्थके अनुवादक और प्रकाशक उक्त त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज ही सम्पादनका सारा कार्य करके मेरे विशेष आशीर्वादके पात्र हुए हैं।

मुझे पूरा विश्वास है कि एतद्देशीय श्रद्धालु जनतासे लेकर विद्वान् मण्डली तक—सभी इस ग्रन्थका पाठ करके श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित सम्बन्धाभिधेयप्रयोजन-तत्त्वके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्तकर श्रीश्रीराधाकृष्ण और श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमधर्ममें अधिकार प्राप्त कर सकेंगे।

अन्तमें यह निवेदन है कि इस ग्रन्थके मुद्रणकार्यमें अत्यन्त शीघ्रताके कारण कुछ मुद्राकर प्रमादादि त्रुटियाँ रह गयी हैं। परन्तु वे अत्यन्त साधारण कोटिकी होनेके कारण शुद्धि-पत्र नहीं दिया गया है। पाठकवर्ग इस ग्रन्थका पाठ कर हमारे प्रति प्रचुर आशीर्वाद करें—यही प्रार्थना है। अलमतिविस्तरेण।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो.—मथुरा (उ. प्र.)
सम्वत २०२३

श्रील प्रभुपाद-किङ्कर
त्रिदण्डि-भिक्षु
श्रीभक्ति प्रज्ञान केशव

निवेदन

जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित मूल 'जैवधर्म' का तृतीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। सुधी पाठकवृन्द कुछ दिनोंसे इस ग्रंथका अभाव विशेष रूपसे अनुभव कर रहे थे। इसके पुनः प्रकाशित होनेसे वह अभाव दूर हुआ है। इससे पूर्व इस ग्रन्थके प्रथम एवं द्वितीय संस्करण श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरासे त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।

इस बहुल प्रचारित ग्रन्थके विषयमें नवीन रूपमें कुछ परिचय देना अनावश्यक है, क्योंकि यह ग्रन्थ सभी रूपानुग गौड़ीयों द्वारा विशेष समादृत है। गद्य साहित्यमें कथोपकथन शैलीमें इस ग्रन्थका अवदान अतुलनीय है। इसके भावगाम्भीर्य, भाषाका लालित्य, विचार-प्रवाह और सर्वोपरि निगूढ़ दार्शनिक तत्त्वसिद्धान्तोंने इस ग्रन्थको प्राकृत साहित्य लेखकोंकी रचनाओंसे सम्पूर्ण रूपसे पृथक् एवं वैशिष्ट्यपूर्ण श्रेणीमें स्थापित कर रखा है। अप्राकृत साहित्य-सृष्टाओंके सम्राट् श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने इस ग्रन्थकी रचनाकर अप्राकृत साहित्य जगत्में वैकुण्ठीय-कौस्तुमणिका आविष्कार किया है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

आलोच्य मूलग्रन्थ बंगभाषामें लिखित होने पर भी इसका हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, उड़िया आदि विविध भाषाओंमें अनुवाद हुआ है तथा विश्वके सभी देशोंमें इसका प्रचुर प्रचार है। अतिमर्त्य महापुरुषोंकी लेखनी भाषा-विवादसे सर्वथा ऊपर उठकर अनन्त विश्वकी कल्याणकामनाके लिए सतत् प्रयत्नशील रहती है। उदार-नैतिक साधु-सन्त किसी भी भाषाके प्रति विद्वेषकी भावना नहीं रखते और न ही स्वार्थान्वेषियोंकी भाँति प्रादेशिकताको प्रश्रय देते हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने विभिन्न भाषाओंमें रचनाऐं की हैं। इससे उनकी उदार-नैतिक मनोवृत्तिका भी परिचय मिलता है। ***"जेई भजे सेई बड़, अभक्त हीन छार। कृष्ण भजने नाहि जाति कुलादि विचार॥"*** अर्थात् जो भजन करते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं। कृष्ण भजनमें जाति-कुलादिका

कोई विचार नहीं है। इस सिद्धान्त वाणीके अनुसार सभी भाषा-भाषी, जाति, समाज एवं देशके लोगोंको वैष्णव या भक्त होनेका अधिकार है—यह सभी सनातन शास्त्रोंमें सर्वतोभावेन स्वीकृत है। अतः प्राकृत भाषा, प्रादेशिकता, जाति-कुलादि विचार द्वारा वैष्णवता या भक्त भावका पार्थक्य नहीं होता।

यह ग्रन्थ मानवमात्रके लिए विशेष हृदयग्राही एवं उपयोगी है। इसके भाव बड़े गम्भीर एवं भाषा बड़ी सरल और आकर्षक है। 'जैवधर्म' की विचारधाराको लेकर ही 'श्रीचैतन्य-शिक्षामृत' और 'श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा' आदि बहुतसे ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। विभिन्न भाषाओंमें इस ग्रन्थका अनुवाद होना ही इसकी लोकप्रियताका यथेष्ट प्रमाण है।

जैवधर्म ग्रन्थमें वर्णित 'धर्म' साधारण लोगोंकी प्राकृत धारणासे सर्वथा भिन्न है। देह और मनके प्राकृत धर्म कदापि आत्मधर्मके स्थानपर प्रतिष्ठित नहीं हो सकते। आत्मधर्म या सनातन धर्मका ही दूसरा नाम जैवधर्म है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जीवमात्रको यही समझानेका प्रयास किया है। उन्होंने कुकर्मी, कुज्ञानी और कुयोगियोंके अधर्म, छलधर्म, विधर्मके साथ तुलना-मूलक आलोचनाके द्वारा सनातन धर्मका वैशिष्ट्य स्थापित किया है। उन्होंने वेद-वेदान्त, उपनिषद्, गीता, भागवतादि शास्त्रोंके निगूढ़ रहस्यों और गौड़ीय-गोस्वामी-गुरुवर्गके गुरु-गम्भीर दार्शनिक तत्त्व-सिद्धान्तोंको जिस प्रकार अत्यन्त सहज-सरल, प्राञ्जल भाषामें प्रकाशित किया है, उससे उनके अतिमर्त्य व्यक्तित्व एवं नित्य सिद्धत्वका पूर्णरूपेण परिचय मिलता है।

इस ग्रन्थमें चालीस अध्याय हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन भागोंमें विभक्त है—नित्य और नैमित्तिक धर्म-मूलक पहला खण्ड, सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनमूलक दूसरा खण्ड और रस-विचारमूलक तीसरा खण्ड। पहले खण्डमें वर्णाश्रमधर्मका विवेचन है। दूसरे खण्डमें दशमूल-शिक्षाका विस्तृत रूपसे वर्णन है, जो वैष्णव-सिद्धान्त मालाकी मध्यमणि स्वरूप है। तीसरे खण्डमें अप्राकृत भाव-विभावित परम रसिकोंका विषय—रस-विचार है।

पहला खण्ड वर्णाश्रम-धर्ममूलक है। दूसरा खण्ड श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु, षट्-सन्दर्भ और श्रीचैतन्य-चरितामृत ग्रन्थका सार-संकलन एवं अखिल शास्त्रोंका निर्यास-स्वरूप है। सभी शास्त्रोंमें सम्बन्ध-अभिधेय एवं प्रयोजनात्मक तत्त्व-विचार की ही प्रतिष्ठा है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जैवधर्ममें कर्म, ज्ञान, योगादि क्लिष्ट साधनोंकी तुच्छता प्रदर्शित की है और प्रसङ्ग क्रमसे निर्विशेष, केवलाद्वैत ब्रह्मवाद (मायावाद) का जिस प्रकारसे

खण्डन किया है, उससे विशुद्ध दार्शनिक जगत् उन्हें चिरदिन कृतज्ञताके साथ स्मरण करता रहेगा। इन्होंने श्रद्धा और भक्तिके बिना कर्म-ज्ञानादि सभी साधनोंको निष्फल प्रमाणित किया है। साथ ही नामब्रह्मकी आराधनाको ही शास्त्रीय-युक्ति और प्रमाणोंके द्वारा सर्वश्रेष्ठ भजनाङ्गके रूपमें स्थापित किया है।

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने भक्ति साधकोंके कल्याणके लिए दशमूल शिक्षाकी अभिनव-पद्धतिका आविष्कार किया है और इसीलिए 'शिक्षा दशमूलम्' नामक ग्रन्थकी रचना भी की है। श्रीलचक्रवर्ती चरणने श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षाओंका सार ***'आराध्यो भगवान्'*** श्लोकमें लिपिबद्ध किया है। गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने मध्वसम्प्रदायके साथ श्रीगौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके विचारोंकी समता प्रदर्शन हेतु 'प्रमेय रत्नावली' में 'श्रीमध्वप्राह' श्लोकको अवतारणा की है। इसी प्रकार श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने उपर्युक्त दोनों प्रसिद्ध श्लोकगत सिद्धान्तोंका सामञ्जस्य विधानपूर्वक दशमूलकी रचना द्वारा गौड़ीय-वैष्णव सिद्धान्तोंका मन्थन करनेका प्रयास किया है। पुनः ***'आम्नायः प्राह तत्त्वम्'*** एक ही श्लोकमें 'दशमूलनिर्यास' संग्रहपूर्वक उसका सुधी-सज्जनोंमें वितरण किया है। इसप्रकार सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक यह ग्रन्थ श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षाओंका सार और श्रीगौड़ीय-वैष्णवोंके लिए कण्ठहार स्वरूप है। रसविचारमूलक तीसरे खण्डके साथ सम्पूर्ण जैवधर्म ग्रन्थका हिन्दी संस्करण पहले प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा बंगला भाषामें इसके कतिपय संस्करणोंमें केवल प्रथम एवं द्वितीय संस्करण ही मुद्रित हुये हैं। सम्प्रति रसविचार मूलक तृतीय-खण्ड बंगाक्षरमें प्रकाशित होने पर पृथक् रूपमें तथा एकत्र भी अधिकारी पाठकोंमें वितरित हुआ है। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने उक्त ग्रन्थकी प्रथम प्रस्तावनामें लिखा है—श्रील प्रभुपादकी विचारधाराके अनुसार भजनमें कुछ उन्नत अधिकार प्राप्त नहीं होने तक रसविचारमें प्रवेश करना उचित नहीं है। श्रील प्रभुपादने 'भाई सहजिया', 'प्राकृतरस-शतदूषणी' और अन्यान्य बहुतसे प्रबन्धोंमें इसे सुन्दर रूपसे व्यक्त किया है। फिर भी आज तक अनधिकारी व्यक्तियोंके हाथोंमें रसविचार सम्वलित यह जैवधर्म ग्रन्थ दिया जाता रहा है। यह श्रील प्रभुपादजीकी विचारधाराके अनुकूल नहीं है। रसविचार मूलक तृतीय-खण्डको हम अनधिकारी साधारण जनोंके हाथोंमें अर्पण नहीं करना चाहते हैं।

उपर्युक्त निषेधाज्ञाके स्वपक्ष और विपक्षमें अनेकानेक युक्तियोंकी अवतारणा की जा सकती है। इससे पूर्व श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरासे त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराज द्वारा सम्पूर्ण ग्रन्थ ही प्रकाशित हुआ है। परन्तु उन्होंने अपने प्रकाशकीय वक्तव्यमें इस विषयमें कोई मन्तव्य प्रकाश नहीं किया है। हो सकता है कि उन्होंने अपने परमाराध्यदेवका इंगित और निर्देश प्राप्त करके ही ऐसा किया हो। मैं व्यक्तिगत रूपमें श्रील गुरुपादपद्मके निषेधात्मक निर्देशके उद्देश्य और तात्पर्यके विषयमें पाठक वर्गको दो एक युक्तियोंके द्वारा बतलाना चाहता हूँ।

परमाराध्य श्रीश्रील गुरुपादपद्मने अपने श्रीगुरुदेव श्रीश्रील सरस्वती प्रभुपादजी की विचारधाराके अनुसार साधन-भजनके विषयमें अधिकार निर्णय पर अधिक जोर दिया है। साधन-भजनमें जब तक उन्नत अधिकार प्राप्त न हो जाये तब तक रसविचारमें प्रवेश करना किसी भी साधकके लिए अनुचित है। शास्त्रोंका ऐसा ही निर्देश है। सभी शास्त्र सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजनात्मक और विधि-निषेधमूलक हैं। साधु-गुरु-वैष्णवाचार्यगण शास्त्रीय विधि-निषेधोंका भलीभाँति पालन करते हुए शास्त्रोंकी यथार्थ मर्यादाका स्थापन करते हैं। वे अपने दिव्य जीवनचरित्र द्वारा भजन क्षेत्रमें यथार्थ रूपमें मार्गदर्शन करते हैं। साधकजन उनका पथ अनुसरणकर कृतार्थ होते हैं।***'ततोदुःसंगमुत्सृज्य सत्षुसज्जेत बुद्धिमान'*** यही भागवतीय विधि और निषेध है। पुनः ***'स्मर्तव्यो भगवान् विष्णु विस्मर्तव्यो नजातु चित्'***—इसे भी अन्वय और व्यतिरेक रूपमें मूलविधि और मूलनिषेध कहा गया है। भक्तिके प्रतिकूल विषय वर्जनीय हैं एवं भक्तिके अनुकूल विषय सर्वतोभावेन ग्राह्य हैं। षडंग शरणागतिमें ऐसा ही कहा गया है।

श्रीगुरुपादपद्म अनधिकारी व्यक्तियोंके हाथोंमें रसविचार वाले तृतीय खण्डको देना नहीं चाहते थे। अनधिकार रस-चर्चा करने वालोंको वे 'उन्मार्ग-गामी' और इचड़ेपाका (कच्चा नीरस सूखा कटहल) 'प्राकृत सहजिया' कहा करते थे। इन लोगोंका उन्नतोज्ज्वल माधुर्य-रसके भजनमें अधिकार नहीं है। ये लोग रूपानुगभजन प्रणाली या चिन्ताधारासे भ्रष्ट हैं। उनकी सतत्त्वानभिज्ञता उच्छृंखलताका ही परिचायक है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षाका प्रचार करना ही कीर्त्तन है—वे इसकी उपलब्धि नहीं कर पाते।

साधन-भजनमें जिस प्रकारसे अधिकारका विचार स्वीकृत है, भक्ति-शास्त्रादि आलोचनामें भी अधिकारी-अनधिकारीका विचार निर्दिष्ट है।

कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने श्रीमद्भागवत दशम्स्कन्धमें रासपञ्चाध्यायीके प्रारम्भ और अन्तमें उसके अनुशीलन करनेवाले अधिकारी-अनधिकारीका विचार किया है। ***'विक्रीड़ितं व्रजवधुभिः'*** आदि शलोकोंमें अधिकारी और ***'नैतत् समाचरेज्जातु'*** आदि श्लोकोंमें अनधिकारीका निर्देश किया है। अनधिकारीके लिए निषेधाज्ञा होनेपर भी यथार्थ अधिकारीके अधिकार, क्षमता और सामर्थ्यकी बात शास्त्रोंमें सर्वत्र ही स्वीकृत है। श्रील गुरुपादपद्मकी युक्तिमें यथार्थ अधिकारी व्यक्तिके अधिकारको तनिक भी खर्व नहीं किया गया है। साधन-भजनमें उन्नताधिकार प्राप्त करने वाले साधारण विधि-निषेधका अतिक्रमणकर अप्राकृत रसमार्गमें प्रवेश करते हैं तथा क्रमशः प्रेम-भक्ति लाभकर धन्यातिधन्य हो जाते हैं। इसलिए अधिकारी साधकजन अप्राकृत मधुर-रस विचारमूलक विभागका अनुशीलन कर प्रीति लाभ करें, यही श्रील गुरुपादपद्मकी उक्तिका तात्पर्य समझना चाहिए।

इस ग्रन्थके मुद्रण कार्यमें अत्यन्त शीघ्रताके कारण कुछ मुद्राकर प्रमादादि त्रुटि-विच्युतियोंका रहना सम्भव है। सुधी पाठकवृन्द द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे आनन्दित होऊँगा। अलमतिविस्तरेण—

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति
श्रीश्रीगुरुपादपद्मकी ९२वीं आविर्भाव तिथिपूजावासर,
सोमवार, २९ माघ, १२ फरवरी, १९९०

श्रीगुरु-वैष्णव दासानुदास
त्रिदण्डि भिक्षु
श्रीभक्ति वेदान्त वामन

प्रकाशकीय वक्तव्य

आज 'जैवधर्म' का तृतीय हिन्दी संस्करण पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेसे मेरी चिरकालकी अभिलाषा पूर्ण हुई है। राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें इस ग्रन्थका अभाव मुझे बुरी तरहसे खटक रहा था।

मूल 'जैवधर्म' ग्रन्थ बंगला भाषामें है। बंगला भाषाभाषी प्रत्येक वैष्णवोंका यह गलेका हार है। इसके लेखक हैं—वर्तमान वैष्णव जगत्‌में स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रकटित विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भक्ति सम्बन्धी सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता, श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षदप्रवर, सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर। इस 'जैवधर्म' ग्रन्थने दार्शनिक एवं धार्मिक जगत्‌में युगान्तर उपस्थित कर दिया है।

श्रीब्रह्म-मध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके वर्तमान संरक्षक, श्रीश्रीभक्तिविनोद-गौरकिशोर-सरस्वतीके मनोभीष्टपूरक, श्रीचैतन्य महाप्रभुकी परम्परामें दशम आचार्यकेशरी, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं उसके अधीनस्थ भारतव्यापी शाखा-गौड़ीय मठोंके संस्थापक एवं नियामक आचार्यवर, मदीय परमाराध्यतम श्रीश्रीगुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी असीम अनुकम्पा, प्रेरणा और साक्षात् आदेशसे ही मैं सर्वविषयोंमें अयोग्य और असमर्थ होने पर भी इस कठिन दार्शनिक एवं गूढ़ उपासना-तत्त्वसे परिपूर्ण ग्रन्थका अनुवाद कर सका हूँ।

इस अनुवादमें मैंने मूल ग्रन्थके उच्चतम दार्शनिक एवं रसविचारके अति गहन सूक्ष्मतम भावोंकी यथासाध्य रक्षा करनेकी चेष्टा की है; साथ ही उन्हें सहज-सरल और सुबोध रूपमें व्यक्त करनेका भरसक प्रयास किया है। इस विषयमें मैं कितना सफल हुआ हूँ, इसे तो पाठकगण ही बतला सकेंगे। जैसा भी हो, इसका सारा श्रेय श्रीश्रीगुरुपादपद्मको ही है।

सर्वप्रथम यह अनुवाद 'श्रीभागवत पत्रिका' के पहले वर्षसे छठे वर्ष तकमें क्रमशः प्रकाशित हुआ। श्रद्धालु पाठकोंने उसे बहुत ही पसन्द किया

तथा उसे पृथक् ग्रन्थाकारमें प्रकाशित करने के लिये मुझे बार-बार अनुरोध किया। फलस्वरूप सम्पूर्ण हिन्दी भाषाभाषी श्रद्धालु जनताके कल्याणार्थ तथा शुद्ध भक्तोंके आनन्द विधानार्थ अल्प समयमें ही द्वितीय संस्करण समाप्त होने पर पाठकोंकी गहन रुचि और मांगकी पूर्ति हेतु यह तृतीय संस्करण पाठकोंके सामने प्रस्तुत किया गया।

यद्यपि मदीय परमाराध्यतम श्रीश्रीआचार्य देवने अपने सम्पादकीय—'प्रस्तावना' में ग्रन्थ और ग्रन्थकारके वैशिष्ट्य और परिचय आदि सभी महत्वपूर्ण विषयोंपर विस्तृत रूपसे प्रकाश डाला है, तथापि मैं भी इस विषयमें दो शब्द लिखनेका लोभ संवरण न कर सका। मैं पाठकोंको ग्रन्थ पढ़नेसे पूर्व 'प्रस्तावना' को मनोनिवेशपूर्वक पाठ करनेके लिये अनुरोध करता हूँ। इससे पाठकोंको परमार्थ-तत्त्वमें प्रवेश करनेमें एक सुन्दर दिशा प्राप्त हो सकेगी—ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

'जैवधर्म' कहनेसे जीव-सम्बन्धी धर्म या जीवके धर्मका बोध होता है। बाह्य दृष्टिसे विभिन्न देशोंकी विभिन्न जातियों एवं विभिन्न वर्गोंके मनुष्यों, पशु-पक्षियों, कीटपतङ्गों तथा दूसरे-दूसरे विभिन्न प्राणियोंके धर्म भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होनेपर भी अखिल ब्रह्माण्डोंके निखिल जीवसमूहका नित्य और सनातन-धर्म एक है। जैवधर्म-ग्रन्थमें इसी सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य-धर्म—'जैवधर्म' का हृदयग्राही साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। इसमें वेद, वेदान्त, उपनिषद, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, इतिहास, पंचरात्र, षट्सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत, भक्ति-रसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि आदि सद्ग्रन्थोंके अतिशय गम्भीर और गहन विषयोंका सार सरस, सरल कथोपकथन शैलीमें गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है।

इस ग्रन्थमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनके रूपमें ग्रथित भगवद्तत्त्व, जीवतत्त्व, शक्तितत्त्व, जीवकी बद्ध और मुक्त दशाएँ, कर्म, ज्ञान और भक्तिका स्वरूप एवं तुलनात्मक विचार, वैधी-रागानुगा भक्तिका सिद्धान्तपूर्ण सरस विचार-वैशिष्ट्य तथा श्रीनाम-भजनकी सर्वश्रेष्ठता आदि विषयोंका अपूर्व मार्मिक विवेचन है।

यद्यपि श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रकाशित जैवधर्म-ग्रन्थके बंगला संस्करणसे पूर्व स्वयं ग्रन्थकार, श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' तथा उनके

परम्परागत परवर्ती गौड़ीय वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रकाशित सभी संस्करणोंमें रस-विचार सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ ही प्रकाशित हुए हैं, परन्तु अस्मदीय परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मने किन्हीं विशेष परिस्थितियोंमें ही इस ग्रन्थके नित्य-नैमित्तिक धर्म विचार-मूलक प्रथम खण्ड तथा सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक द्वितीय-खण्डको एक साथ प्रकाशित किया था; रस-विचार मूलक तृतीय खण्डको प्रकाशित नहीं किया। किन्तु परवर्तीकालमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरासे हिन्दी संस्करण प्रकाशित होनेके समय स्वयं श्रील गुरुपादपद्मने सम्पूर्ण ग्रन्थका सम्पादन किया। उन्होंने उक्त संस्करणकी स्वलिखित प्रस्तावनामें सुस्पष्ट रूपसे रस-विचार सम्वलित तृतीय खण्डके सम्बन्धमें पाठकोंसे अधिकारी-अनधिकारीका विचारकर सतर्क रहकर अनुशीलन करनेका उपदेश दिया है। इसीलिए मैंने द्वितीय संस्करणमें सम्पूर्ण ग्रन्थको एकत्र प्रकाशित होने पर स्पष्टीकरण प्रस्तुत करनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझी।

श्रीचैतन्यचरितामृतकी रचना करते समय रस-विचारका प्रसङ्ग उपस्थित होने पर श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीके हृदयमें भी ऐसी शङ्का उत्पन्न हुई थी कि रस-विचारको इसमें सम्मिलित किया जाय अथवा नहीं; क्योंकि इसे पढ़कर अनधिकारी व्यक्तियोंका कहीं अहित न हो जाये। किन्तु तत्क्षणही उन्होंने रस-विचारको देनेका निश्चय किया—

ये सब सिद्धान्त गुढ़ कहिते न जुयाय।
ना कहिले, केह इहार अन्त नाहि पाय।।
अतएव कहि किछु करिया निगूढ़।
बुझिबे रसिक भक्त ना बूझिबे मूढ़।।
ए सब सिद्धान्त हय आम्रेर पल्लव।
भक्तगण-कोकिलेर सर्वदा बल्लभ।।
अभक्त उष्टेर इथे ना हय प्रवेश।
तबे चित्ते हय मोर आनन्द विशेष।।

(चै. च. आ. ४।२३१-२३५)

अर्थात् सर्वसाधारणके निकट निगूढ़ ब्रजरसका प्रकाश करना सर्वदा अनुचित है; किन्तु इसका सर्वथा प्रकाश न करनेपर इस रहस्यपूर्ण विषयके लुप्त हो जानेकी भी सम्भावना है। नीम और आमके बगीचे एक साथ

सम्मिलित होने पर भी कौए नीमके पेड़ पर बैठकर निम्बोरीका ही आस्वादन करते हैं और रसिक कोयल आमके वृक्ष पर बैठकर मधुर आम्रपल्लव एवं मधुर मंजरीका ही आस्वादन करती है। अतः रस-विचार देना ही उचित है।

हिन्दी जगत्‌में अबतक वैष्णव-धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका तुलनात्मक बोध करनेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर एवं सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका अभाव था। 'जैवधर्म' हिन्दी जगत्‌में इस अभावकी पूर्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगत्‌में विशेषतः वैष्णव जगत्‌में युगान्तर उपस्थित करेगा, इसमें सन्देह नहीं।

प्रस्तुत संस्करणकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने, प्रूफ संशोधन आदि विविध सेवा कार्योंके लिए श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी, एम. ए., एल-एल. बी., साहित्यरत्न; स्नेहास्पद श्रीमान शुभानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान प्रेमानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीमान सुधन्व ब्रह्मचारी, श्रीमान कृष्णचन्द्र ब्रह्मचारी, श्रीमान अनंग मोहन ब्रह्मचारी, श्रीमान शुभकृष्ण ब्रह्मचारी तथा इसके लिए पूर्ण आर्थिक सेवाके लिए श्रीमान कृष्ण गोविन्द ब्रह्मचारी आदिकी सेवा प्रचेष्टा सराहनीय एवं विशेष उल्लेख योग्य है। श्रीश्रीगुरुगौरांग गान्धर्विका गिरिधारी इन सबपर प्रचुर कृपा आशीर्वाद वर्षण करें—यही उनके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है।

इस ग्रन्थमें यदि कोई भूल दृष्टिगोचार हो तो पारमार्थिक पाठकगण निजगुणों से क्षमा करेंगे तथा संशोधन कर ग्रन्थका सार ग्रहण कर बाधित करेंगे।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो.—मथुरा (उ. प्र.)
सम्वत् २०४६

श्रीश्रीगुरु-वैष्णव-कृपालेश प्रार्थी
त्रिदण्डि भिक्षु
श्रीभक्ति वेदान्त नारायण

चतुर्थ संस्करणका सम्पादकीय वक्तव्य

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग एवं श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीकी असीम अनुकम्पासे हिन्दी जैवधर्मका चतुर्थ संस्करण पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। अल्प समयमें ही इस ग्रन्थका तृतीय संस्करण निःशेष हो जाना ही इसकी अत्यन्त लोकप्रियताका प्रमाण है। विशेषतः विश्वकी सभी प्रमुख भाषाओंमें इसका रूपान्तर हो रहा है तथा सर्वत्र प्रचार हो रहा है, यह भी इसकी लोकप्रियताका प्रमाण है। तृतीय संस्करणकी त्रुटियोंको सुधार कर कम्पूटर द्वारा इसकी कम्पोजिंग कराकर आकर्षक और सुन्दर रूपमें इसे छपवाया जा रहा है। आशा है यह ग्रन्थ दार्शन एवं भजन राज्यमें आए अभिनव अभावकी पूर्तिकर पाठकोंका कल्याणसाधन करेगा।

प्रस्तुत संस्करणकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने, प्रुफ संशोधन आदि विविध सेवा कार्योंके लिए श्रीओमप्रकाश व्रजवासी, एम. ए., एल–एल. बी., श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीमान् पुरन्दर दास ब्रह्मचारी, परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी, हरिप्रिय दास ब्रह्मचारी, सुबलसखा दास ब्रह्मचारी, श्रीमती वृन्दादेवी दासी, शान्तिदेवी दासी आदिकी सेवा चेष्टा अत्यन्त प्रशंसनीय है। श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग–गान्धर्विका–गिरिधारी इन सबपर प्रचुर कृपा आशीर्वाद वर्षण करें—यही उनके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है।

इस ग्रन्थमें कोई भूल दिखायी पड़े तो पारमार्थिक पाठकगण निजगुणोंसे क्षमा करेंगे तथा संशोधन कर ग्रन्थका सार ग्रहण कर बाधित करेंगे। अलमतिविस्तरेण।

श्रीश्रीगुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु
भक्तिवेदान्त नारायण

कार्तिक पूर्णिमा, संवत् २०५८
वृन्दावन

विषय–अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ
पहला	जीवका नित्य और नैमित्तिक धर्म	१–१०
दूसरा	जीवका नित्य धर्म शुद्ध और सनातन है	११–२०
तीसरा	नैमित्तिक धर्म असम्पूर्ण, हेय, मिश्र और अचिरस्थायी है	२१–३६
चौथा	नित्यधर्मका नामान्तर वैष्णव धर्म है	३७–५०
पाँचवाँ	वैधीभक्ति–नित्यधर्म है, नैमित्तिक नहीं	५१–६४
छठा	नित्यधर्म तथा जाति और वर्ण आदिका भेद	६५–८९
सातवाँ	नित्यधर्म और संसार	९०–११६
आठवाँ	नित्यधर्म और व्यवहार	११७–१४०
नवाँ	नित्यधर्म और प्राकृत विज्ञान तथा सभ्यता	१४१–१५८
दसवाँ	नित्यधर्म और इतिहास	१५९–१७५
ग्यारहवाँ	नित्यधर्म और पौत्तलिकता	१७६–१८६
बारहवाँ	नित्यधर्म और साधन	१८७–२०१
तेरहवाँ	प्रमाण–विचार और प्रमेय प्रारम्भ	२०२–२२०
चौदहवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत शक्ति विचार	२२१–२३९
पन्द्रहवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत जीव तत्त्वका विचार	२४०–२५६
सोलहवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत माया–ग्रसित जीव तत्त्वका विवेचन	२५७–२७४
सत्रहवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत मायासे मुक्त जीवोंका विचार	२७५–२९१
अठारहवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत भेदाभेद विचार	२९२–३०९
उन्नीसवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत अभिधेय विचार	३१०–३२८
बीसवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत अभिधेय विचार–वैध साधन–भक्ति	३२९–३४७
इक्कीसवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत अभिधेय विचार–रागानुगाभक्ति	३४८–३६२
बाईसवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत प्रयोजन तत्त्वका विचार आरम्भ	३६३–३७५

अध्याय	विषय	पृष्ठ
तेईसवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत नाम तत्त्वका विचार	३७६—३८८
चौबीसवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत नामापराधका विचार	३८९—३९९
पच्चीसवाँ	प्रमेयके अन्तर्गत नामापराध (नामाभास) का विचार	४००—४१०
छब्बीसवाँ	रस-विचार (प्रारम्भिक)	४११—४२०
सत्ताइसवाँ	रस-विचार (सात्त्विक एवं व्यभिचारी भाव एवं रत्याभास)	४२१—४२८
अट्ठाइसवाँ	रस-विचार (मुख्य रति)	४२९—४३८
उन्तीसवाँ	रस-विचार (विभिन्न रसोंके अनुभावादि, शान्त, दास्य, सख्यका वर्णन)	४३९—४४८
तीसवाँ	मधुर-रस-विचार (वात्सल्य और मधुर)	४४९—४५७
इकतीसवाँ	मधुर रस-विचार (मधुर रसके नायक कृष्णका स्वरूप, स्वकीया नायिकाएँ)	४५८—४७१
बत्तीसवाँ	मधुर-रस-विचार (परकीया नायिकाएँ)	४७२—४८५
तैतीसवाँ	मधुर-रस-विचार (श्रीराधाका स्वरूप, पाँच प्रकारकी सखियाँ, दूती)	४८६—५०१
चौंतीसवाँ	मधुर-रस-विचार (सखीभेद, सखियोंमें तारतम्य)	५०२—५१४
पैंतीसवाँ	मधुर-रस-विचार (मधुर रसके उद्दीपन)	५१५—५२७
छत्तीसवाँ	मधुर-रस-विचार (मधुर रसमें स्थायीभाव, रतिका क्रम-विकास)	५२८—५४७
सैंतीसवाँ	शृङ्गार-रस-विचार (शृङ्गारका स्वरूप, विप्रलंभ)	५४८—५५८
अड़तीसवाँ	शृङ्गार-रस-विचार (मुख्य संभोग, अष्टकालीय लीला)	५५९—५७६
उनतालीसवाँ	लीला-प्रवेश-विचार	५७७—५८५
चालीसवाँ	सम्पत्ति-विचार	५८६—५९५
	फलश्रुति	५९६

(ख) संस्कृत श्लोकों एवं गद्योंकी अनुक्रमणिका

(अ)

अक्षयं ह वै १९७
अघच्छित् स्मरणं ३८४
अङ्गीमुख्यः ४५३
अचिन्त्याः खलु २०९
अजामेकां लोहित २२३
अज्ञानतिमिरान्धस्य ४५६
अणुभ्यश्चवृहद्भ्यश्च ५७
अत आत्यन्तिकं ९७
अतत्त्वतोऽन्यथाबुद्धिः २९८
अतथ्यानि वितथ्यानि ३०१
अतलत्वादपारत्वात् ५९१
अथवा बहुनैतेन २१२
अथापि ते देव २३२
अद्य वाब्दशतान्ते वा २९३
अनन्य गतयो मर्त्त्या ३८२
अनादि वासनोद्भास ४५३
अन्तर्गतोऽपि १५७
अन्धं तमः प्रविशन्ति ३०३
अन्याभिलाषिता शून्यं १२२, ३१३
अपरीक्ष्योपदिष्टं १११
अपरेयमितस्त्वन्यां १५४
अपश्यं गोपाम् १६६, २१३
अपाणि पादो जवनो २२९
अपि चेत् सुदुराचारो ६६, ७५
अयं आत्मा ३०६
अयं नेता...चतुष्टयम् २१८-२२०
अर्चायामेव हरये ४०१,४१८,१२०
अवतारावलीबीजं ४४२
अवशेनापि यन्नाम्नि ३७९
अवैष्णवोपदिष्टेन ३३४
अशौचमनृतंस्तेयं ३०
अश्रद्दधाने विमुखे ३९१
अश्वत्थ तुलसी ३३९
अष्टादशमहादोषैः ४१७
असत्यं क्रोध ४१७
असद्वा इदमग्र ३०५
असद्भिः सह १५६
अस्थूलश्चानणुश्चैव ४१६
अस्मान्मायी सृजते २५१
अहस्तानि १७४
अहं ब्रह्मास्मि २,१९६,३०२,३०३
अहिंसा सत्यमस्तेयम् ३०
अहो बत श्वपचो ७९

(आ)

आचार्यवान् पुरुषो ३३३
आज्ञायैव गुणान् ८५
आत्मकोटि गुणं ४१९

आत्माऽपहत पाप्मा २८२
आत्मानमेव प्रियम् १९९
आत्मा वा अरे १९२, १९९
आत्मैवेदं ३०४
आत्यन्तिकाधिकत्वादि ५०३
आधयो व्याधयो ३७९
आनन्दचिन्मय ४८२
आनुकूलस्य संकल्पः ७८
आम्नायः प्राह २०२
आशाभरैरमृतसिन्धु ५८२
आस्तिक्यं दाननिष्ठा ३०
आस्य जानन्तो नाम ३६३
(इ)
इति संचिन्त्य ४६७
इदमेव हि ३८४
(ई)
ईशावास्यमिदं ८३
ईश्वरे तदधीनेषु १२२, ४१८
(उ)
उपवासे तु ३३८
(ऋ)
ऋचोऽक्षरे २३३
ऋणमेतत् ३८४
(ए)
एकमेव परमं तत्त्वं २९७
एकमेवाद्वितीयं २४३, २९५
एकोवशी सर्वगः २१४
एतत् षड्वर्ग हरणं ३८२
एतद्योनीनि भूतानि १५४
एते चांशकलाः २१४
एष मोहं ३०१
एवं स देवो भगवान् १६५, ३०४
एवमेवैष सम्प्रसादः २८१
(ऐ)
ऐश्वर्य योगाद् ४१६
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य २१०
(ओ)
ॐ आस्य जानन्तो ३९३
ॐ तत्सत् ३९३
ॐ तमुस्तोतारः ३९४
ॐ पदं देवस्य ३९३
ॐ ब्रह्मविद्याप्नोति ३०४
(क)
कामाद् द्वेषाद् ३५३
कालेन नष्टा ८८, २०४
किं करिष्यति सांख्येन ३८३
कृतिसाध्या भवेत् ३१७
कृते यद्ध्यायतो ३८५
कृष्णं स्मरन् ५८९
कृष्णेति मंगलं ३९५
केन कं पश्येत १९६
को ह्येवान्यात् ३०७
कौमारं पंचमाब्दान्तं ४२०
क्लेशघ्नी शुभदा ३१५
क्वाप्यचिन्त्य ४५४
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा ७६
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं १९५
(ग)
गुणाविरुद्धा अप्येते ४१६
गुरोरप्यवलिप्तस्य ३३४

गुरोरवज्ञा ३९१
गृहीत विष्णुदीक्षाको १२१
गोकुलाख्ये माथुर २३३
गोकोटी दानं ग्रहणे ३८१
गोपवेशं सत्पुण्डरीक २३१
गोपवेशधरः...सन्दर्शनोत्सुकः ५६७
गोप्यः कामाद् ३५३
(छ)
छन्दांसि यज्ञाः २२३
छन्नः कलौ २३५
(ज)
जगत् व्यापारवर्ज्जं २५१
जने चेज्जातभावेऽपि ५९४
जातश्रद्धो मत्कथासु ७४
जीवितं विष्णुभक्तस्य ११९
ज्ञानं मे परमं गुह्यं १५०
(त)
ततो भजेत मां ७४
ततो वै सदजायत ३०५
तत्त्वमसि २, १९६, ३०२, ३०३
तथा न ते माधव २८९
तदात्मानं स्वयमकुरुत ३०५
तदेजति तन्नैजति २२९
तद्यथा महामत्स्य २४१
तद्विज्ञानार्थं ३३३
तद्विष्णोः परमं पदं १६४
तन्मातुः...समुद्यता ५७४
तपस्विभ्योऽधिको १९८
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति २३२
तव वक्षसि राधाहं १५३
तमाहुरग्र्य ३०५
तमेव धीरो ८७
तर्काऽप्रतिष्ठानात् ३१७
तस्मिन्महन्मुखरिता ५८६
तस्मै तृणं निदधा २३०
तस्य वा एतस्य २४१
तस्यैष आत्मा ३०५
ताम्बूलार्पण–पादमर्दन ५८३
तावत् कर्माणि कुर्वीत १७५
ता वार्यमाणाः ३५७
ताश्च दुग्ध्वा...चोष्यादिकानि च ५७४
तासां मध्ये साक्षात् २३३
तीर्थकोटी सहस्राणि ३८१
तृणादपि सुनीचेन २२,१३८,४०२
तेजो वलं धृतिः ३०
ते ध्यानयोगानुगता २२२
तेन प्रोक्ता २०४
तेनेदं पूर्णं ३०५
तेष्वशान्तेषु मूढेषु १५७
त्वयोपभुक्त स्रग् ३४२
त्वां नत्वा ५८८
त्वमाराध्य तथा ३०१
(द)
दान–व्रत–तपस्तीर्थ ३८२
दिव्ये ब्रह्मपुरे २३३
दुर्ल्लङ्घ्य वाक्य प्रखरा ५०३
देवर्षि भूताप्तनृणां १७४, ३२३
दैवी ह्येषा गुणमयी ९८
द्वयोरेकतरस्येह ४५४
द्वा सुपर्णा २६६

(ध)
धन्यस्यायं नवः ५९४
धर्मव्रतत्यागहुतादि ३९१
धृतिः क्षमा दमोस्तेयं ११८
ध्यायन् कृते यजन ३२४
(न)
नक्तं हविष्यान्नं ३३८
न तस्य कार्यं २२२, ३०२
न देश नियमस्तस्मिन् ३८३
न धर्मं नाधर्मं ५७७
न मुञ्चेच्छरणायातमपि ५८८
न मे प्रियश्चतुर्वेदी ८४
न रोधयति मां योगो २८२
न लोकवेदोदित ११५
न वा अरे ३०७
न ह्यस्मयानि तीर्थानि २८३
नातः परं कर्म ७१
नान्यत् पश्यामि ३९५
नाम चिन्तामणिः ३८५
नाम-संकीर्तनं विष्णोः ३८४
नामापराध युक्तानां ३८९
नामैकं यस्य वाचि ३९०
नाम्नामकारि ३९८
नाम्नोऽस्य यावती ३९५
नाम्नो बलाद् यस्य ३९१
नायमात्मा प्रवचनेन १६५, २३२
नारायणकलाः शान्ताः १३९
नारायण जगन्नाथ ३८२
नारायणाच्युतानन्त ३८३
नाहं मन्ये ३०६
नित्योनित्यानां ९, १९६, ३०२, ३०६
निर्दोष-गुण-विग्रह २१५
निशान्तः प्रातः ५६२
नेह नानास्ति ३०२
नैतदशकं विज्ञातुं ३०५
नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रि २८३
नेषा तर्केण २०८, ३०६, ३१७
(प)
परकीयाभिमानिन्य...महानिशि ५६२
परमानन्दसन्दोहा ४१७
परव्योमेश्वरस्यासीत्...प्रवर्त्तितः २०५
पराख्यायाः शक्तेरपृथक् २२१
पराञ्चि खानि व्यतृणत् २३१
परास्य शक्तिर्विविधैव १५३, २४७
परिचर्या तु सेवोपकरणादि ३४२
परीक्ष्य लोकान् ७९
पादौ हरेः ३२७
पाशोबद्धो भवेज्जीवः १४५
पुराणं मानवो ३०६
पुनस्तेनैव गच्छन्ति ४१९
पूर्णमदः पूर्णमिदं २११
प्रज्ञानं ब्रह्म २, १९६, ३०२, ३०३
प्रणयललितनर्मस्फार ५८३
प्रतापी धार्मिकः ४४२
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः ३०५
प्रभुः कः को जीवः ३६४
प्रवृत्तिरेषा भूतानां १७४
प्रस्थाप्यते मया...निजालिभिः ५७५
प्राणो ह्येष यः ३०७
प्रातश्च बोधिता...विभजन्नदन् ५६४

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि १५७
प्रायो मुमुक्षवस्तेषां १०१, २८८
प्रेम-सौभाग्य ५०३
प्रेमाञ्जनच्छुरित ५९३
प्रोक्तेन भक्तियोगेन ७४
प्रोद्यन्...अङ्गतां व्रजेत ४५३
(ब)
ब्रह्माण्डकोटि...इत्यादिभिगुणैः ४४२
ब्रह्मा देवानां प्रथमः १६४, २०४
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः ७०
(भ)
भक्तिरस्य भजनं १९९
भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन २४, ७८
भगवति च ३७३
भवापवर्गो भ्रमतः ८१, १३३, २८४
भावाः सर्वे तदाभासा ४५६
भिद्यते हृदयग्रन्थिः ७४
भूतानि यान्ति १८१
भूमिरापोऽनलो १५४, २५४
(म)
मत्तः परतरं २१४
मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं ८०, ४०४
मध्याह्नो यामिनी चोभौ ५६२
मध्ये वृन्दावने....मिथः ५६३
मयाऽध्यक्षेण प्रकृति २१२
मय्यन्येन भावेन १०९
महान् प्रभुर्वै पुरुषः २१
महान्तं विभुं ३०४
महापातकयुक्तोऽपि ३८०
महाप्रसादे गोविन्दे ८२
मां हि पार्थ व्यापाश्रित्य ७०, ७६
मा ऋचो मा यजुः ३८१
माधुर्यादपिमधुरं ३६९
मायाकलिततादृक् ४७८
मायान्तु प्रकृतिं २५१
मायावादमसच्छास्त्रं ३००
मा हिंस्यात् १७३
मीयते अनया २५१
मुकुन्दलिङ्गालय-दर्शने ३२७
मुक्तानामपि सिद्धानां १०१, २८८
मुक्तिर्हित्वान्यथा-रूपं २८१
मुखबाहूरूपादेभ्यः ३१९
मुख्यस्तु पञ्चधा शांतः ४३५
मुख्यस्त्वङ्गत्वमासाद्य ४५३
मुहुरहो रसिका ४३८
मोहस्तन्द्रा भ्रमो ४१७
(य)
य एकोऽवर्णो २२४
य एको जालवानीशत २२४
य एषां पुरुषं ३१९
यत् कर्मभिर्यत्तपसा ७४
यतो वा इमानि २९७
यतो वाचो २४७
यत्नेनापादितोऽप्यर्थः २०९
यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा २४१
यथातथ्यतोऽर्थान् ३०५
यथा यथात्मा परिमृज्यते १८२, ५९३
यथा यथा हरेर्नाम ३८०
यथा सौमित्रिभरतौ ४१९
यदभ्यर्च्य हरिं ३८४

यदा भ्राम भ्रामं २८०
यदा यस्यानुगृह्णाति ८५
यदा वै श्रद्दधाति ७७
यदीच्छेरावासं ५९१
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते ३७७
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं २१२
यद् विज्ञाते ३९
यद्वैतत् सुकृतं २३०
यन्नामकीर्त्तनफलं ३९४
यन्नामधेयंम्रियमाण ३८१
यन्नाम सकृत् श्रवणात् ७१
यस्मात् परं न ३०५
यस्य देवे पराभक्तिः ८८, १९८
यस्य मुख्यस्य यो भक्तो ४५३
यस्य यत् सङ्गतिः पुंसो २८३, ३४५
यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं ११४
यस्यात्मबुद्धिः कुणपे १२०, १८१
यावता स्यात् ३३७
यावत्ते मायया स्पृष्टा १५६
येऽन्येऽरविन्दाक्ष १०२, २५६, २८९
येनाक्षर पुरुषं वेद २०४
योऽनधीत्य द्विजो ८७
योगमायामुपाश्रितः २३४
योगिनामपि सर्वेषां ७६, १९८
यो वा एतदक्षरं ८७, ३०३
यो वेद निहितं ३०५
यो व्यक्ति न्यायरहितम् ३३४
(र)
रजोभिः समसंख्याताः १०१, २८८
रसान्तरेण व्यवधौ ४५४
रसानां समवेतानां ४५२
रसो वै सः १६६, ४३८
राक्षसाः कलिमाश्रित्य २७९
राजसूयाश्वमेधानां ३८२
राधाकृष्णप्रणय विकृतिर्ह्लादिनी २३६
राधया भवतश्च ५३९
(ल)
लालसोद्वेगजागर्या ५५०
लोके व्यवायामिषमद्यसेवा १७३
(व)
वदन्ति तत्तत्त्वविदः ४०
वरं हुतवहज्वाला १५६
वरीयान् बलवान् ४४२
वर्णानामाश्रमाणाञ्च २९
विप्राद् द्विषड्गुणयुतात् ३१, ८६
विमुक्त संभ्रमा या ४४७
विश्रंभो गाढ़ विश्वासविशेषो ४४८
विष्णोर्यत् परमं पदम् १६४
विष्णोरेकैकं ३८६
विसृजति हृदयं १०९
वेद्यं वास्तवमत्र ७
व्यतीत्य भावनावर्त्म ४३७, ४६२
व्रतानि यज्ञाश्छन्दांसि २८२
(श)
शक्ति-शक्तिमतोरभेदः १५२
शमोदमस्तपः शौचं २९
शिवस्य श्रीविष्णोर्य ३९१
शुश्रूषणं द्विज गवां ३०
शूद्रं वा भगवद्भक्तं ८४
श्वपचोऽपि महीपाल ७०

श्वविड्वराहोष्ट्र ११९
श्यामाच्छबलं प्रपद्ये १६६, २१३
श्रद्धा त्वन्योपायवर्ज्जं ७७
श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः ४७
श्रवणोत्कीर्त्तनादीनि ५८९
श्रुतिः कृष्णाख्यानं ३२३
श्रुतिस्मृतिपुराणादि ३३६
श्रुतिस्मृति-पुराणेषु ३९४
श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये ३९१
(स)
स इमान लोकान् २१२
स ऐक्षत २१२
संगम्य....गवां पयः ५७३
संसेव्य दशमूलं ३६५
सङ्गो यः संसृते २८३
स जहाति मतिं ११०
स चानन्ताय कल्पते ९९
सतत्त्वतोऽन्यथा-बुद्धिः २९५
सतां निन्दा ३९१
सतां प्रसङ्गान्मम ८२, १३३, २८५
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म १६५, ३०५
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत् ४६७
सत्यं शौचं दया मौनं १५७
सदेव सौम्येदमग्र ३०४
स पर्य्यगाच्छुक्रम् २२९
स विश्वकृद् विश्ववित् २२४
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो ८१, २८१
स मृग्यः श्रेयसां हेतुः ३३५
समृद्धिमान क्षमाशीलः ४४२
सम्प्रदाय विहीना २०५
सर्वं खल्विदं ३०२, ३०४
सर्वं मद्भक्तियोगेन ७४
सर्वं ह्येतद् ३०६
सर्वत्र सर्वकालेषु ३८३
सर्वथैव दुरुहोऽयमभक्तैः ४६२
सर्वधर्मान् परित्यज्य ८५, २८६
सर्वधर्मोज्झिताः ३८३
सर्वभूतेषु यः पश्येत् १०९, १२८
सर्व-रोगोपशमं ३८०
सर्वे नित्याः शाश्वतश्च ४१७
सर्वे वेदा यत्पदम् ८८
स वै मनः ३२७
स वै ह्लादिन्यायाः २२७
सहस्र नाम्नां पुण्यानां ३८६
साङ्केत्यं पारिहास्यं ४०३
सा च शरणापत्तिलक्षणा ७७
सान्द्रप्रेमरसैः प्लुता ५८२
सापत्नोच्चयरज्यदुज्ज्वल ५८३
सापि कृष्णं वनं...गवां व्रजेत् ५६७
सेवा साधकरूपेण ५८९
सोऽश्नुते सर्वान् १६५, ३०५
स्थाने ऋषिकेश ३८२
स्फुलिङ्गाः ऋद्धाग्नेरिव २४०
स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुः ३१९
स्यादृढेऽयं रतिः ५३३
स्वकर्मफलभुक् २९३
स्वतः सिद्धो वेदो २०३
स्वयूथे यूथनाथैव ५०३
स्वरूपार्थैर्हीनान् २५८
स्वरूपावस्थाने ३६४

स्वर्गकामोऽश्वमेधं १९५
स्वल्पादि रुचिः २०९
स्वागमैः कल्पितैः ३०१
स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा १२७
(ह)
हन्ति निदन्ति वै १५७
हरिस्त्वेकं तत्त्वं २१०
हरे कृष्ण हरे कृष्ण १९, ४८, १७६
हरे केशव गोविन्द ३८०
हरेर्नामैव नामैव ३७९
हरेः शक्तेः २९४
हा नाथ गोकुल सुधाकर ५८२
हास्याद्भुतस्थाः ४३६

(ग) पद्यांशोंकी अनुक्रमणता

(अ)
अचिरे पाइबे भाई ४०९
अतएव माली आज्ञा १३९
अन्तरे निष्ठा कर १६
अन्य वाञ्छा अन्य पूजा ३१४
अविचिन्त्यशक्ति युक्त २९६
असाधु संगे भाई ४०७
(आ)
आमि सिद्ध कृष्णदास ९८
(इ)
इषत् विकशि पुनः ४०९
(ए)
एइ रूप संसार भ्रमिते ९९
एइ शुद्ध भक्ति ३१४
एकान्त सरल भावे ४०९
(क)
कण्ठे मोर भङ्गे स्वर ४०९
कभु नामाभास हय ४०७
कभु राजा कभु प्रजा ९८
कभु स्वर्गे कभु मर्त्ये ९८
करि एत उपद्रव ४०९
कर्णरन्ध्र पथ दिया ४०९
काकुति करिया कृष्णे ९९
किछु ना बुझिते दिला ४०९
किवा विप्र किवा न्यासी ५
कौन जानता जननि १४३
कृष्ण आमाय पाले रक्षे ४०७
कृष्ण तारे देन ९९
कृष्णनाम इच्छामय ४०९
कृष्णनाम चिन्तामणि ४०९
कृष्णनाम धरे कतबल ४०९
कृष्ण–बहिर्मुख हञा ९८
कृष्ण भक्तिर अनुकूल ४०७
कृष्ण भूलि सेई जीव ८
कृष्ण मन्त्र जप सदा ३२५
कृष्ण मन्त्र हैते हबे ३२५
केंदे बले ओहे कृष्ण ९९
(ग)
गृहस्थ वैरागी दुहे ४०८
गोरापद आश्रय करह ४०८
गौरजन संग कर ४०९

(च)
चक्षे धारा देहे घर्म ४०९
चित्कण—जीव ९८
(ज)
जीवेर स्वरूप हय ८
ज्ञान भोग चेष्टा छाड़ ४०७
(त)
तथापि अचिन्त्यशक्त्ये २९६
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ १९
(द)
दस अपराध त्यज मान ४०७
(न)
नाचो गावो भक्त सङ्गे १३९
नानारत्न राशि हय १९७
नाम बिना कलिकाले ३२५
नामेर बलाई यत ४०९
निज तत्त्व जानि ९८
नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम ३१७
(प)
प्राकृत वस्तुते यदि २९७
पिशाची पाइले येन मति ९८
पूर्ण विकशित हञा ४०९
प्रेमेर कलिका नाम ४०९
(ब)
बड़ हरिदासेर न्याय ४०८
बद्धजीवे कृपा करि ४०९
बहु अंग साधने ४०९
(भ)
भजनेर मध्ये श्रेष्ठ १९
भाल ना खाइबे ४०८
(म)
मर्कट वैराग्य ना कर १६
मायाके पिछने राखि ९९
मूर्छित हइल मन ४०९
मोरे सिद्ध देह दिया ४०९
(य)
यदि करिबे कृष्ण नाम ४०७
यदि चाह प्रणय राखिते ४०८
(ल)
लइनु आश्रय यार ४०९
(व)
वस्तुतः परिणामवाद १९६
विषय वासनानले ४०९
वैरागी भाई ग्राम्य कथा ४०८
(श)
शुद्ध भक्ति हैते हय ३१४
शून्य स्थल देखि लोकेर २७१
श्रवणादि क्रिया तार ३१७
श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु १७७
श्रीकृष्णचैतन्य श्रीप्रभु ४
(स)
सइ! केवा सुनाइल कृष्णनाम ५१३
सप्तताल देखि प्रभु २७१
सशरीरे ताल गेल २७१
साधु पावा कष्ट बड़ ४०८
साधुसंगे कृष्णनाम ९९
स्वपनेओ ना कर भाई ४०८
(ह)
हरि हरये नमः ३९९
हृदय हइते बले ४०९

(घ) सांकेतिक चिह्नोंकी अनुक्रमणिका

अ.—अन्त्यलीला, अध्याय
अनु.—अनुच्छेद
अन्त्य.—अन्त्यलीला
आ.—आदिलीला, आदिखण्ड, आनन्दवल्ली
आ. अनु—आनन्दवल्ली अनुच्छेद
आदि—आदि लीला
ईशावास्य—ईशोपनिषद्
ऐत—ऐतरेयोपनिषद्
कठ—कठोपनिषत्
कात्याब—कात्यायन संहिता
के. उ.—केनोपनिषत्
गारुड़.—गरुड़ पुराण
गी.—श्रीमद्भगवद्गीता
गीता—श्रीमद्भगवद्गीता
चै. च.—श्रीचैतन्यचरितामृत
चै. भा.—श्रीचैतन्यभागवत
चै. च. अ.—श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्यलीला
चै. च. आ.—श्रीचैतन्यचरितामृत आदिलीला
चै. च. म.—श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला
छा.—छान्दोग्योपनिषद्
तै. आ.—तैत्तिरीयोपनिषत् आनन्दवल्ली
तै. ब्र.—तैत्तिरीय ब्रह्मानन्दवल्ली
तै. भृगु. अनु.—तैत्तिरीय भृगुवल्ली अनुच्छेद
द. ल.—दक्षिण लहरी
दशमूल—दशमूल शिक्षा
नारसिंह—नृसिंह पुराण
प.—पर्व
पाद्म—पद्मपुराण
वि.—विलास
भ. र. सि.—भक्ति रसामृत सिन्धु
पू. ल.—पूर्व लहरी
भी. प.—भीष्म पर्व
म.—मन्त्र, मध्यलीला
मा. उ.—माण्डूक्य उपनिषत्
मु.—मुण्डकोपनिषत्
श्वे.—श्वेताश्वतरोपनिषत्
स्कान्द—स्कन्दपूराण
ह. भ. वि.—हरिभक्तिविलास